|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 3: कर्मयोग

1/3 (श्लोक 1-13), रविवार, 08 जून 2025

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/QHMxKbexaU0

हमारे नियत कर्म और यज्ञार्थ कर्म

श्रीहरि नाम सङ्कीर्तन, '**गीता परिवार हमारा**' जैसा मधुर गीत, मधुराष्टकम् और हनुमान चालीसा पाठ के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करते-करते हम कर्मयोग पर आ पहुँचे हैं। गीता पढ़ना सभी के लिए सहज हो जाए, इसलिए हमारा पाठ्यक्रम सरल से कठिन की ओर बनाया गया है। इस क्रम में तीसरा अध्याय, तीसरे स्तर में आता है। इस अध्याय का नाम ही स्पष्ट बता देता है कि यह कर्मयोग है।

गीता जी के सभी अध्यायों के नाम में योग शब्द है-

साङ्ख्ययोग, कर्मयोग, अर्जुनविषादयोग, ज्ञानकर्मसंन्यासयोग।

श्रीमद्भगवद्गीता योगशास्त्र है। योग शब्द का अर्थ है, परमात्मा के साथ जुड़ जाना। मात्र जुड़ना ही नहीं वरन् जुड़ कर एक हो जाना। जुड़ने में भी यदि दो बातें जुड़ गयीं तो दो रह जाती हैं, इसलिए जुड़ कर एक हो गयी तब वह योग कहलाता है। जीव का शिव के साथ योग, जीवात्मा के साथ परमात्मा का योग कैसे करना है, यही भगवद्गीता हमें सिखाती है।

अर्जुन को विषाद हो गया कि यह मैं क्या कर रहा हूँ, यह क्या हो रहा है? अपनों के साथ युद्ध करने का जब आत्यन्तिक विषाद हो गया, तब उस दुःख से बाहर निकालने हेतु श्रीभगवान् साक्षात् उपस्थित हुए। (जब मनुष्य दुःख में अत्यन्त डूब जाता है और अपना कर्त्तव्य भूलने लगता है तो वह मात्र दुःख नहीं कहलाता, वह विषाद कहलाता है)। भगवद्गीता हमारे लिए श्रीभगवान् का वाङ्मयी रूप है।

जयतु जयतु गीता
वाङ्मयी कृष्णमूर्ती।

हमारे जीवन में भी ऐसे अनेक दुःख भरे प्रसङ्ग आते हैं। इन प्रसङ्गों से बाहर निकालने वाली श्रीमद्भगवद्गीता है। कितना भी कठिन विषय हमारे जीवन में आ जाए, भगवद्गीता उससे हमें बाहर निकालती है। जब अर्जुन श्रीभगवान् की शरण में आये, तब श्रीभगवान् ने अर्जुन को उपदेश करना प्रारम्भ किया।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।2.7।।

प्रथम अध्याय में श्रीभगवान् ने एक भी श्लोक नहीं कहा है। जब अर्जुन दुविधा में थे और उन्हें कुछ भी समझ नहीं आ रहा था, तब उन्होंने श्रीभगवान् का आश्रय लिया। अर्जुन ने श्रीभगवान् का शिष्यत्व ग्रहण करके उनसे प्रश्न किया, तब उन्होंने दूसरे अध्याय में कहना प्रारम्भ किया। श्रीभगवान् ने उस गूढ़ तत्त्व को बताया। उन्होंने बताया कि हमारा मूल स्वरूप क्या है? हम स्वयं को जानते नहीं हैं। हम स्वयं को देह मानते हैं। देह को मेरा कहने वाला **"मैं"** कौन हूँ?

श्रीभगवान् अर्जुन को मुख्य तत्त्व बताते हैं और इसको कैसे प्राप्त करना है, यह भी बताते हैं। इसके लिए कर्म का महत्त्व भी बताते हैं। श्रीभगवान् अर्जुन को ज्ञान और कर्म दोनों के महत्त्व को बताते हैं, जिससे अर्जुन के मन में शङ्का उत्पन्न हो जाती है कि एक बार श्रीभगवान् ज्ञान की बात कहते हैं और फिर कर्म की बात कहते हैं। मैं क्या करूँ? मुझे आचरण में कौन सी बात लानी है, श्रीभगवान् मुझे एक ही बात नहीं बता रहे हैं। सब कुछ बता रहे हैं।

इसी बात को श्रीभगवान् इस अध्याय में स्पष्ट करते हैं।

3.1

अर्जुन उवाच
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते, मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं(ङ्) कर्मणि घोरे मां(न्), नियोजयसि केशव॥3.1॥

अर्जुन बोले - हे जनार्दन! अगर आप कर्म से बुद्धि (ज्ञान) को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर हे केशव! मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हैं ?

विवेचन- ज्याय का अर्थ है श्रेष्ठ। दूसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने ज्ञान का महत्त्व बताया। स्थितप्रज्ञ कैसा होना चाहिए? यह भी बताया। अर्जुन को लगा कि ज्ञान प्राप्त करना ही सबसे महत्त्वपूर्ण है।

जब मनुष्य आर्त हो जाता है तो कुछ प्राप्त करने के लिए आर्तता से बार-बार श्रीभगवान् को पुकारता है। अर्जुन भी आर्त होकर श्रीभगवान् को दो-दो नाम से पुकारते हैं। वे कहते हैं कि हे भगवन्! यदि आपका मत ऐसा ही है कि ज्ञान श्रेष्ठ है तो हे केशव, हे जनार्दन! आप कर्म और ज्ञान दोनों की ही बात क्यों कर रहे हैं? कर्म से बुद्धि श्रेष्ठ है, ज्ञान श्रेष्ठ है, ऐसा कह रहे हैं तो फिर युद्ध जैसे घोर कर्म करने के लिए मुझे क्यों प्रवृत्त कर रहे हैं? यदि ज्ञान श्रेष्ठ है तो मुझे ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही कहो। मैं यह सब छोड़कर किसी गुरुकुल में अथवा वन में चला जाऊँगा। वहाँ ज्ञान प्राप्त करूँगा, योगाभ्यास करूँगा।

मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैंने तो आपसे पूछा है कि मेरे लिए क्या श्रेष्ठ है और आप दोहरी बात कर रहे हो। आप कर्म की भी बात कर रहे हो और ज्ञान की भी बात कर रहे हो।

3.2

व्यामिश्रेणेव वाक्येन, बुद्धिं(म्) मोहयसीव मे।
तदेकं(वँ) वद निश्चित्य, येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥3.2॥

(आप अपने) मिले हुए से वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित-सी हो रही है। (अतः आप) निश्चय करके उस एक बात को कहिये, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त हो जाऊँ।

विवेचन- अर्जुन और श्रीभगवान् का नाता बहुत सुन्दर है। वे दोनों एक-दूसरे के मित्र हैं, सखा हैं। वे मामा-फूफा के बेटे हैं तो दोनों एक-दूसरे के भाई भी हैं। अब अर्जुन ने श्रीभगवान् का शिष्यत्व भी स्वीकार कर लिया है, इसलिए श्रीभगवान् अब अर्जुन के गुरु के स्थान पर भी हैं।

यद्यपि श्रीभगवान् गुरु के स्थान पर हैं, परन्तु अर्जुन अपने सच्चे स्वभाव के कारण श्रीभगवान् से कुछ भी पूछ सकते हैं। अपने मन में आयी हुई प्रत्येक शङ्का, निसङ्कोच भाव से पूछ सकते हैं। अर्जुन ने सभी कुछ पूछ लिया, इसलिए भगवद्गीता में सभी प्रश्नों

के उत्तर प्राप्त हो जाते हैं। हमारे जीवन का कोई भी प्रश्न होगा उसका उत्तर भगवद्गीता में प्राप्त होगा। ऐसा कोई विषय या प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर भगवद्गीता में नहीं है।

अर्जुन श्रीभगवान् से कहते हैं कि आप मिश्रण जैसी भाषा बोल रहे हो और उससे आप मेरी बुध्दि को मोहित कर रहे हो, भ्रमित कर रहे हो। एक बात निश्चित करके बताओ जिसके द्वारा मुझे श्रेय प्राप्त होगा, मेरा कल्याण होगा।

कल्पना करो कि श्रीभगवान् हमारे सामने प्रकट हो जाएँ और हमसे कहें कि वत्स, तुम्हें क्या चाहिए? तो हम सोचेंगे कि मुझे ये चाहिए, वो चाहिए। मेरी यह समस्या दूर हो जाए। मुझे कलाएँ प्राप्त होनी चाहिए। ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। क्या नहीं माँगें, क्या माँगें, यही समझ नहीं आएगा।
श्रीभगवान् कहेंगे, एक शब्द में माँगो। अर्जुन ने यही वर एक शब्द में माँगा। अर्जुन ने कहा कि मुझे नहीं पता कि मेरा कल्याण किसमें है, आप भली-भाँति जानते हैं, अतः जो मेरे लिए श्रेय हो, वही मुझे प्रदान करो।

दूसरे अध्याय में जब अर्जुन को प्रतीत हुआ कि मेरा कहीं दोष हो रहा है। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा तो वह श्रीभगवान् की शरण में आये।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।
2.7

आत्यन्तिक कारुणिक स्वभाव के कारण मैं सब कुछ भूल गया हूँ, मुझे समझ नहीं आ रहा हैं कि मेरा धर्म क्या हैं? मेरा कर्त्तव्य क्या हैं? मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे उपदेश दीजिए, जिससे मेरा कल्याण हो।

3.3

श्रीभगवानुवाच
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा, पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां(ङ्), कर्मयोगेन योगिनाम्॥3.3॥

श्रीभगवान् बोले - हे निष्पाप अर्जुन! इस मनुष्यलोक में दो प्रकार से होने वाली निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। (उनमें) ज्ञानियों की (निष्ठा) ज्ञानयोग से और योगियों की (निष्ठा) कर्मयोग से (होती है)।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा, दो प्रकार के मार्ग मैंने पहले भी बताये हैं। वे दोनों ही मनुष्य का कल्याण करने वाले हैं, जिसके लिए जो योग्य है, उसके लिए वह मार्ग हैं।

जो जिस मार्ग पर चल सकता हैं, उसके लिए वह मार्ग है, वह निष्ठा है। यदि मनुष्य यह सोचे कि मैं कोई भी कर्म नहीं करूँगा, केवल ज्ञान प्राप्त करके उस सिद्धि को प्राप्त कर लूँगा, परम ध्येय को प्राप्त कर लूँगा, तो यह किसी के लिए सम्भव नहीं हैं। कर्म का मार्ग तो सभी को आचरण में लाना ही पड़ता है।

3.4

न कर्मणामनारम्भान्, नैष्कर्म्यं(म्) पुरुषोऽश्नुते।

न च सन्न्यसनादेव, सिद्धिं(म्) समधिगच्छति॥3.4॥

मनुष्य न तो कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता का अनुभव करता है और न (कर्मों के) त्याग मात्र से सिद्धि को ही प्राप्त होता है।

विवेचन- कोई भी व्यक्ति कर्म किये बिना नैष्कर्म्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

नैष्कर्म्य-
अब कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं हैं, ऐसी स्थिति नैष्कर्म्य स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त करने के बाद जो मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करने वाला होता है, वह भी कर्म करता ही रहता है।

वह बिना कुछ किये सब कुछ कर जाता है और कुछ किये बिना उसका सारा कार्य हो जाता है। सब कुछ करते हुए भी **"मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ"**, ऐसा उसका भाव जाग्रत रहता है। यही है नैष्कर्म्य सिद्धि।

जैसे किसी कम्पनी अथवा संस्था का प्रबन्धक अपने कार्यालय में अपने कमरे में जाकर बैठा और पत्र पढ़ने लगा तो कार्यालय के सभी कर्मचारी अपने-अपने काम में लग गए। उससे पहले सभी अपनी बातों में लगे हुए थे। प्रबन्धक को देखकर सब अपने काम में लग गए। अब इसमें प्रबन्धक ने कुछ नहीं किया। उनकी उपस्थिति मात्र से ही सब कार्य सुचारु रूप से होने लगे। उनके कुछ न करते हुए भी उनके सभी कार्य होने लग गए। उनको नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त हो गयी।

दूसरी स्थिति है कि सब कुछ कार्य करते हुए भी वह कहे कि मैंने कुछ नहीं किया। यदि प्रबन्धक कहे कि सब कुछ मेरे करने से ही होता है, मुझे कार्यालय आना पड़ता है, तो वह नैष्कर्म्य स्थिति नहीं है।

सूर्य भगवान् दैनिक उदय होते हैं, अस्त होते हैं, हमें दिन भर प्रकाश देते हैं, सारी पृथ्वी का कार्य सूर्य भगवान् से ही चलता है। दिन भर उनके ही कारण हम कार्य कर सकते हैं। उनके अस्त होने पर हम सो सकते हैं। हम सूर्य भगवान् की प्रार्थना करते हैं कि आप हमेशा कार्य करते रहते हैं। कभी आपको विश्रान्ति नहीं है। कभी आप रुकते नहीं हैं। कभी आप थकते नहीं हैं।

सूर्य भगवान् कहेंगे कि मैं कोई कार्य नहीं करता हूँ।
न मैं उदय होता हूँ, न मैं अस्त होता हूँ। मैं तो अपने स्थान पर स्थित हूँ। पृथ्वी गोल घूम रही है, अतः आपको ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्योदय हो गया, सूर्यास्त हो गया। मैं कुछ नहीं कर रहा। सूर्य भगवान् एक ही स्थान पर स्थित हैं और वे कुछ नहीं कर रहे हैं, तदपि उनका कार्य हो रहा है। यही नैष्कर्म्य स्थिति है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि यह स्थिति प्राप्त करने के लिए बहुत कार्य करना पड़ता है। कर्म किये बिना यह अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती है। नैष्कर्म्य अवस्था प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ कर्म करना पड़ता है। अधिकारी पद तक पहुँचने के लिए भी बहुत कार्य करने पड़ते हैं।

नैष्कर्म्य अवस्था प्राप्त करना, अर्थात् परम सिद्धि प्राप्त करना। यह परमात्मा की प्राप्ति की अवस्था है। केवल संन्यास लेने से ही नहीं होता। केवल काम्य कर्मों का त्याग कर लेने से ही मनुष्य मुक्त नहीं होता।

एक मित्र का उदाहरण-
एक मित्र को ऐसा लगा कि उन्हें संन्यास ले लेना चाहिए। उन्होंने सोचा कि मैं संन्यास लेकर परम सिद्धि को प्राप्त कर लूँगा, पर वह विवाहित है, गृहस्थ है, बच्चे हैं तो वह संन्यास कैसे लें? संन्यास लेने के लिए पत्नी और बच्चों की अनुमति चाहिए। वह उनके पीछे पड़ गए कि मुझे संन्यास लेना है, मुझे जाने दो।

एक दिन परेशान पत्नी ने कह दिया कि ठीक है आप जाओ। मैं घर सम्भाल लूँगी। पत्नी की सहमति मिलते ही वह अपने गुरुजी के आश्रम में चले गए। वहाँ अपने गुरुजी को बताया कि वह सब कुछ छोड़कर संन्यास लेने के लिए उनके पास आ गये हैं।

गुरुजी ने कहा, यह बड़ा अच्छा हुआ कि तुम आ गए। यहाँ आश्रम का निर्माण कार्य चल रहा है। मैं चिन्तित था कि यह सारा कार्य कौन देखेगा? तुम अभियन्ता हो। अब तुम इस कार्य को देखना आरम्भ कर दो। उसने कहा कि गुरुजी मैं तो सब काम छोड़कर आया हूँ। आप मुझे वही सब कार्य करने को बोल रहे हैं। गुरुजी ने कहा कि यह तो कर्म है। यह तो करना ही है। थोड़े दिन उसने वहाँ काम किया फिर सोचा कि जब सब काम करना ही है तो घर में ही क्यों न करूँ? यह सोचकर वह घर वापस चले गये।

कहने का अर्थ यही है कि यह नैष्कर्म्य की अवस्था, संन्यासी की अवस्था कर्म किये बिना प्राप्त नहीं हो सकती। केवल संन्यास ले लिया, गेरुए वस्त्र धारण कर लिए, संन्यासी बन गया, ऐसा नहीं होता। संन्यासी बनने के लिए पहले बहुत सारे कर्म करने पड़ते हैं।

3.5

न हि कश्चित्क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः(ख्) कर्म, सर्वः(फ्) प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥

कोई भी (मनुष्य) किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि (प्रकृति के) परवश हुए सब प्राणियों से प्रकृति जन्य गुण कर्म करवा लेते हैं।

विवेचन- मनुष्य एक क्षण भर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। यदि मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह सकता तो यह एक बन्धन हो गया।

चौदहवें अध्याय में हमने देखा है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति के तीन गुण, **सत्त्व, रज और तम** कैसे कार्य करते हैं।

गुण का एक अर्थ रस्सी भी है। जिस प्रकार रस्सी मनुष्य को बाँध कर रखती है, वैसे ही ये तीन गुण, मनुष्य को बाँध कर रखते हैं। मनुष्य को कर्म करने का बन्धन डालते हैं। हम देहधारी हैं। जब तक हम देह में हैं, हमें कर्म करना ही पड़ेगा। कोई व्यक्ति कहता है कि मुझे बहुत कुछ मिला है, मैं कोई कार्य नहीं करता। उससे कोई पूछे कि वह भोजन करता है? पानी पीता है? श्वास-प्रश्वास करता है? श्वास-प्रश्वास का कर्म तो करना ही पड़ेगा। भोजन तो करना ही पड़ेगा। कोई भी बिना कर्म किये रह नहीं सकता, क्योंकि प्रकृति के गुणों के कारण हम बन्धन में हैं।

यदि किसी व्यक्ति के हाथ-पाँव बाँधकर एक रथ में डाल दिया जाए तो उसे रथ के साथ जाना ही पड़ेगा। ऐसी ही हमारी अवस्था है। हम शरीर रूपी रथ के साथ बँधे हुए हैं। यह रथ हमें जहाँ ले जाएगा, हमें जाना ही पड़ेगा। यह जो कार्य करवाएगा, हमें करना ही पड़ेगा। शरीर के लिए कर्म करना ही पड़ेगा। एक क्षण भी कर्म किये बिना रह नहीं सकते।

संसार का एक भी पदार्थ इन तीन गुणों से मुक्त नहीं है। इसी भाँति हमारा शरीर भी तीन गुणों वाली प्रकृति का ही है। प्रकृति का ही शरीर बना हुआ है तो यह शरीर भी त्रिगुणात्मक है। हम प्रकृति के नियन्त्रण में हैं, तीन गुणों के नियन्त्रण में हैं। ये तीन गुण हमें नचाते हैं। ये तीन गुण हमसे कार्य करवाते हैं।

सत्त्वगुण हमें बताता है कि कौन सा कार्य अच्छा है। रजोगुण अपनी इच्छानुसार कार्य करवाता है। तमोगुण आलस्य में डुबा कर रखता है। इस प्रकार ये तीनों गुण हमें नचाते रहते हैं। हम इन गुणों के वश में हैं। हम गुणातीत नहीं हैं। गुणातीत अवस्था प्राप्त करने तक मनुष्य को कर्म करते रहना पड़ेगा।

3.6

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा, मिथ्याचारः(स्) स उच्यते॥3.6॥

जो कर्मेन्द्रियों (सम्पूर्ण इन्द्रियों) को (हठपूर्वक) रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते हुए बैठता है, वह मूढ़ बुद्धि वाला मनुष्य मिथ्याचारी (मिथ्या आचरण करने वाला) कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हम कर्मेन्द्रियों को रोककर रखते हैं परन्तु मन के द्वारा उसी का विचार करते हैं। इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों के साथ मिलने नहीं देते, पर चिन्तन उन्हीं विषयों का करते हैं।

कल एकादशी हो गयी। निर्जला एकादशी थी। कुछ लोग व्रत भी रखते हैं। कुछ लोग सामान्य रूप से फलाहार करते हैं तो कुछ लोग जल भी नहीं पीते। ऐसे लोग किसी के यहाँ गए और उन्होंने सामने समोसे रख दिए तो वे कहते हैं कि आज मेरा एकादशी का व्रत है। आज नहीं खाऊँगा। कल दो खा लूँगा। मन में चिन्तन उसी विषय का करना है।

श्रीभगवान् कहते हैं-
प्रयास-पूर्वक इन्द्रियों को रोकना और
मन में उसका चिन्तन करना, यह मिथ्याचार है।

एक गुरु और शिष्य कहीं जा रहे थे। शिष्य अपने गुरु का मार्ग स्वच्छ करते हुए जा रहे थे। चलते-चलते एक नदी आ गयी। नदी में मात्र घुटने भर पानी था पर प्रवाह बहुत तेज था। शिष्य ने देखा कि वहाँ एक युवती खड़ी थी।

उस युवती ने कहा-
"मुझे नदी के पार जाना है। पानी का बहाव तेज है। मुझे डर लगता है कि मैं पानी में बह जाऊँगी। आप कृपा करके मेरा हाथ पकड़कर मुझे उस पार तक छोड़ दीजिये। मेरा छोटा सा बालक घर में भूखा बैठा है। सन्ध्या का समय है।"

शिष्य ने कहा-
"मैं संन्यासी हूँ। मैं आपको स्पर्श नहीं कर सकता। मैं आपको वहाँ नहीं छोड़ सकता।" वह स्त्री विनती करने लगी कि मेरा बालक राह देखता होगा। कृपा करके मुझे छोड़ दीजिये। शिष्य ने मना कर दिया कि वह ऐसा नहीं कर सकता।

तभी वहाँ उसके गुरुजी आ गए। उनके पूछने पर स्त्री ने कहा-
"मुझे नदी के उस पार जाना है। मुझे डर लग रहा है और ये मुझे हाथ पकड़कर ले जाने से मना कर रहे हैं।"

गुरुजी ने कहा-
"चलो मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।" उन्होंने ऐसा ही किया। फिर गुरुजी और शिष्य दोनों आश्रम में चले गए।

दूसरे दिन सुबह उठकर शिष्य ने गुरुजी से पूछा-
"आपने तो मुझे बताया था कि संन्यास लिया है तो स्त्री शरीर को स्पर्श नहीं करना चाहिए। आपने उस स्त्री का हाथ पकड़कर उस पार तक छोड़ दिया।"

तब गुरुजी ने कहा-
"मैंने तो उसे वहाँ छोड़ दिया, तुमने अभी तक पकड़कर रखा है।"

पकड़कर रखने का अर्थ है कि तुमने उसे स्पर्श नहीं किया, पर मन में अभी तक वहीं चिपके हो? मन में उसी का चिन्तन कर रहे हो?
श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसा विमूढ़ व्यक्ति मिथ्याचारी है, ढोङ्गी है। विषयों को न स्पर्श करने का ढोङ्ग करता है और चिन्तन विषयों का ही करता है। यही तो मिथ्याचार है।

3.7

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा, नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः(ख्) कर्मयोगम्, असक्तः(स्) स विशिष्यते॥3.7॥

परन्तु हे अर्जुन! जो (मनुष्य) मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके आसक्ति रहित होकर (निष्काम भाव से) कर्मेंद्रियों (समस्त इन्द्रियों) के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

विवेचन- जो व्यक्ति अपने मन के द्वारा ही अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है, उसका मन दूसरे विषयों का चिन्तन करता हो, ऐसा नहीं है। वह मन के द्वारा ही इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त करता है। इन्द्रियों को प्रयासपूर्वक नहीं रोकता। वह अपने मन को ही उस तरफ जाने नहीं देता। वह कर्मेन्द्रियों के द्वारा ही कर्मयोग करता रहता है।

एक है कर्म और एक है कर्मयोग। श्रीभगवान् इस अध्याय में हमें सिखाते हैं कि कैसे कर्म को कर्मयोग में बदलना है? योगी मन के द्वारा इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखकर कर्मेन्द्रियों द्वारा ही कर्म करता जाता है। बुद्धि लगाकर कर्म करता है परन्तु मन के द्वारा उससे चिपका हुआ नहीं रहता। वह व्यक्ति ही विशेष है। अर्जुन को भी ऐसा ही बनना है।

संसार में रहना है तो कर्म तो करना ही है।
मन को उन कर्मों में लिप्त नहीं रखना है।

जहाज पानी में रहता है, पर उसमें डूबता नहीं है। जब तक जहाज में छेद नहीं होता, तब तक वह डूबता नहीं है। जब तक संसार हमारे अन्तरङ्ग में घुसता नहीं है, तब तक हम इस संसार को सरलता से पार कर सकते हैं। कर्म करते रहना परन्तु उसमें अटकना नहीं है। ये जिसको साध्य हो गया वह इस भव सागर को पार कर लेता है।

3.8

नियतं(ङ्) कुरु कर्म त्वं(ङ्), कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते, न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥3.8॥

तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

विवेचन- तुम अपना नियत कर्म करो। जिस कर्म में अपना हित हो।
जो कर्म हमें करना चाहिए उन्हें विहित कर्म कहते हैं।

अलग-अलग उम्र में हमारे अलग-अलग कर्म होते हैं।

विद्यार्थी के लिए व्यायाम करना, पढ़ाई करना, माता-पिता की सेवा करना उसका कर्त्तव्य कर्म है। उसका **विहित कर्म** है। उस विहित कर्म में जब छात्र निश्चित करता है कि उसे गणित पढ़ना है या वाणिज्य पढ़ना है या वकालत पढ़ना है अथवा विज्ञान पढ़ना है तो यह उसके लिए **नियत-कर्म** हो गया। जो विषय उसने चुना उसकी पढ़ाई करना उसका नियत-कर्म है।

पढ़ाई करना उसका विहित कर्म है पर गणित की पढ़ाई करना उसका नियत कर्म है। विहित के अन्तर्गत बहुत सारे कर्म आते हैं। जो निश्चित है, वह नियत कर्म है।

श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! तुम अपना नियत-कर्म करो, कभी अकर्मण्य मत रहो। जो कर्त्तव्य के रूप में सामने आता है, उसे अवश्य करना है। अकर्मण्य रहने से शरीर भी नहीं चलेगा। जिस भूमिका में हमारे लिए जो कर्म निश्चित हुआ है, उसे करना ही है।

गृहस्थ आश्रम के लिए जो कर्म है, नौकरी, व्यवसाय आदि करना है। परिवार के लिए कुछ धनार्जन करना है। गृहणी को गृह का कार्य चलाना है। जो भी हमारा नियत कर्म है, वह हमें करना ही है।

मनुष्य को अपने कर्म से हटकर दूसरे का कर्म अच्छा लगता है इसलिए वह अपना कर्म छोड़कर दूसरे का कर्म करने लगता है। साइट पर काम करने वालों को लगता है कि साफ्टवेयर (software) वालों का काम अच्छा है, घर पर बैठकर ही काम करते रहते हैं। साफ्टवेयर (software) वालों को लगता है इनका काम अच्छा है। ये बाहर घूमते रहते हैं। दूसरे का काम अच्छा लगता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि अपना नियत कर्म करो। दूसरे के काम की तरफ मत देखो।

3.9

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं(ङ्) कर्मबन्धनः।
तदर्थं(ङ्) कर्म कौन्तेय, मुक्तसङ्गः(स्) समाचर॥3.9॥

यज्ञ (कर्तव्य पालन) के लिये किये जाने वाले कर्मों से अन्यत्र (अपने लिये किये जाने वाले) कर्मों में लगा हुआ यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है, (इसलिये) हे कुन्तीनन्दन ! तू आसक्ति-रहित होकर उस यज्ञ के लिये (ही) कर्तव्य कर्म कर।

विवेचन- यज्ञार्थ कर्म अर्थात् यज्ञ के भाव से कर्म करना।
हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्जवलित करते हैं, उसमें आहुति देते हैं, यह यज्ञ है। हमारे कर्त्तव्य कर्म भी इसी भाव से करना, यज्ञ है। यह भगवद्गीता में यज्ञार्थ का अपेक्षित अर्थ है ।

यज्ञ के भाव से किये जाने वाले कर्त्तव्य कर्म, यज्ञार्थ कर्म कहलाते हैं। मैं अपना कर्त्तव्य कर रहा हूँ, यह मुझे करना ही है। उस कार्य को पूर्ण करके श्रीभगवान् को अर्पण करना है। श्रीभगवान् ने मुझे यह दायित्व सौंपा है, यह नियत कर्म मुझे सौंपा है, इसके लिए श्रीभगवान् ने मेरा चयन किया है। इस भाव से कर्म करना ही यज्ञ के लिए कर्म करना कहलाता है।

मैं परमात्मा के लिए यह कार्य कर रहा हूँ, ऐसे भाव रखते हुए जो कार्य करता है, वह यज्ञ हो जाता है। अन्य सभी कर्म हमें बन्धन में डालते हैं परन्तु यज्ञार्थ कर्म हमें बन्धन में नहीं डालते। परमात्मा के लिए कार्य कर रहा हूँ, इस भाव से कार्य करने से बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। बाकी सारी बातों की आसक्ति से मुक्त हो जाओ। सब कार्य श्रीभगवान् को अर्पण कर दो।

राष्ट्राय स्वाहा, इदं राष्ट्राय इदं न मम।

राष्ट्र के लिए कार्य करना मेरा कर्त्तव्य है। मैं जो भी कार्य कर रहा हूँ, राष्ट्र के लिए कर रहा हूँ। यह मेरा नहीं है।

से यज्ञ में **इन्द्राय स्वाहा, सूर्याय स्वाहा, गणेशाय स्वाहा,** अलग-अलग देवताओं के लिए किया जाता है वैसे ही यह अपने ध्येय के लिए किया जाता है। परमात्मा, यही मेरा ध्येय है। राष्ट्र को सर्वोच्च स्थिति तक ले जाना ही मेरा ध्येय है। इस भाव से परमात्मा को ही अर्पण कर दिया। यह यज्ञ हो गया और यह कर्म बन्धन में नहीं डालेगा। यह कर्म मुक्ति दिलाएगा। यह सिद्धि दिलाएगा। अपना कर्त्तव्य कर्म अच्छे से करो।

3.10

सहयज्ञाः(फ्) प्रजाः(स्) सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वम्, एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥3.10॥

प्रजापति ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदिकाल में कर्तव्य कर्मों के विधान सहित प्रजा (मनुष्य आदि) की रचना करके (उनसे प्रधानतया मनुष्यों से) कहा कि (तुम लोग) इस कर्तव्य के द्वारा सबकी वृद्धि करो (और) यह (कर्तव्य कर्मरूप यज्ञ) तुम लोगों को कर्तव्य-पालन की आवश्यक सामग्री प्रदान करने वाला हो।

विवेचन- प्रजा की उत्पत्ति हुई, किसने की? यह सारा संसार किसने निर्माण किया? प्रजापति ने निर्माण किया। ब्रह्मदेव ने निर्माण किया।

जब यह निर्माण किया, तब हर जीव का कर्तव्य भी निर्माण किया। यज्ञ के साथ प्रजा का निर्माण हुआ। हर जीव के जन्म के साथ ही उसके कर्तव्य का भी जन्म होता है। हमें क्या कर्म करना है? यह जन्म के समय ही निश्चित हो जाता है। प्रजापति ने सारे संसार का निर्माण करते समय मनुष्य को कहा, कर्तव्य के साथ तुम्हारा जन्म हुआ है। इस यज्ञ के द्वारा अपना उत्कर्ष कर लो। यह तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण करने वाला हो। तुम्हारा कल्याण करने वाला हो। इससे तुम अपना उत्कर्ष कर लो, अपनी उन्नति कर लो।

मनुष्य जितना कार्य करेगा, उससे उसकी उन्नति होगी। इसमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों उन्नति सम्माहित हैं। यज्ञार्थ कर्म करने से भौतिक उन्नति भी होती है और आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। हमारा प्रत्येक कर्म यज्ञार्थ कर्म के भाव से होना चाहिए। हमारा भोजन करना भी एक यज्ञ है।

"वदनि कवळ घेता नाम घ्या श्रीहरीचे ।
सहज हवन होते नाम घेता फुकाचे ।
जिवन करि जिवित्वा अन्न हे पूर्णब्रह्म ।
उदरभरण नोहे जाणिजे यज्ञकर्म ॥

भोजन करने से पहले यह मन्त्र बोला जाता है। एक-एक निवाला एक-एक आहुति है। हमारे जठर में परमात्मा बैठे हैं।

हमने पन्द्रहवें अध्याय में देखा है कि हमारे अन्दर बैठकर पाचन क्रिया कौन कर रहा है। यज्ञ कर रहा हूँ, इस भाव से भोजन करना चाहिए। इधर-उधर खड़े होकर भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसा यज्ञ सारी कामनाएँ पूर्ण करने वाला हो, ऐसा आशीर्वाद ब्रह्माजी ने हम सब को दिया है।

3.11

देवान्भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं(म्) भावयन्तः(श्), श्रेयः(फ्) परमवाप्स्यथ॥3.11॥

तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम् कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

विवेचन- घर में ज्येष्ठ लोग हैं। छोटे बच्चे हैं। ज्येष्ठ लोग बच्चों का लालन-पालन करते हैं, उन्हें बड़ा करते है, उन्हें सिखाते हैं। बड़े होकर वे बच्चे अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करते हैं। एक-दूसरे की सहायता करते जाना, एक-दूसरे के हित के लिए कार्य करते जाना।

सर्वभूतहिते रताः
श्रीमद्भगवद्गीता कहती है कि सबके कल्याण के लिए कार्य करते जाओ। जैसे घर में ज्येष्ठ हैं, वैसे ही हमारे आस-पास देवता हैं। वायु-देवता हैं, जल-देवता हैं। यदि हम इनके लिए कार्य करेंगे तो वो भी सन्तुष्ट हो जायेंगे।

वट वृक्षों का रोपण करना, जल सञ्चय करना, ये सभी देवताओं को प्रसन्न करने वाले कार्य हैं। उनके लिए किये जाने वाले यज्ञ हैं। यज्ञ के भाव से हम कार्य करेंगे तो देवता भी हमें आशीर्वाद देंगे। यदि हम देवताओं को उनके यज्ञ में सहायता करेंगे तो वो भी हमारे यज्ञ में सहायता करेंगे। हमारे ऊपर भाँति-भाँति के ऋण रहते हैं।

1.देव ऋण
2.पितृ ऋण
3.ऋषि ऋण
4.समाज ऋण

बचपन से लेकर बड़े होने तक हमें सारी बातें प्राप्त होती हैं। सब कुछ हमारा नहीं है। वर्षा के रूप में हमें जल की प्राप्ति होती है। स्वच्छ वायु के रूप में वायु प्राप्त होती है। ये देवताओं से हमें प्राप्त होता है। हमारे माता-पिता भी हमें कुछ देते हैं। हमारा समाज हमें कुछ देता है। हमारा देश हमें बहुत कुछ देता है।

हमें अच्छे विचार ऋषि-मुनि देते हैं। वैज्ञानिक हमें सुख-समृद्धि देते हैं। ये सब **ऋषि-ऋण** है। समाज जो भी हमें देता है, वह हमारे ऊपर **समाज-ऋण** है। माता-पिता से जो प्राप्त होता है,,वह **पितृ-ऋण** हैं। जब तक मनुष्य इन चार ऋणों के बोझ से दबा हुआ है, वह कभी आनन्द की प्राप्ति नहीं कर सकता। इस ऋण से मुक्ति प्राप्त करना चाहिए। इसलिए जिससे जो प्राप्त हुआ है, वह देना भी है।

हम सारा ऋण नहीं चुका सकते, परन्तु सेवा करके कम तो किया जा सकता है। वृक्षारोपण करना, प्रदूषण नहीं करना, ये सब देवताओं का ऋण चुकाना है। प्रदूषण करना देवताओं को कष्ट देना है। धरती की स्वच्छता करना, नदियों की स्वच्छता करना ये ऋण चुकाने वाली ही बातें हैं। जितना हो सके ऋण से मुक्ति के लिए कार्य करना चाहिए।

3.12

इष्टान्भोगान्हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो, यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥3.12॥

यज्ञ के द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुम लोगों को बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिए हुए भोगों को जो पुरुष उनको बिना दिए स्वयं भोगता है, वह चोर ही है।

विवेचन- हम जो भी यज्ञ करेंगे, उससे देवता प्रसन्न हो जाएँगे और वे हमें आशीर्वाद देंगे। जिनसे हमें जो भी प्राप्त हुआ है, उनको कुछ भी न देते हुए बस अपने मनोरञ्जन के लिए जियेंगे कि मैंने कमाया है, मैं जैसे चाहूँगा वैसे खाऊँगा, मैं किसी पर निर्भर नहीं हूँ ऐसा सोचेंगे, जहाँ से जो प्राप्त हुआ है उन्हें कुछ भी न देते हुए स्वयं के लिए जो जीता है, श्रीभगवान् कहते हैं कि वह चोर ही है।

हम सब पर निर्भर हैं। आत्मनिर्भर की जो बात है, वह देश के लिए है कि हमें स्वयं पर निर्भर होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अन्य जीव पर, अन्य समाज पर, देवताओं पर निर्भर है। किसान खेत में मेहनत करता है, अनाज उगाता है जो हमें खाने के लिए प्राप्त होता है। कपास उगाता है उससे धागा बनता है। धागे से कपड़ा बनता है। हम कपड़ा खरीदते हैं। हम कहते हैं कि मैंने अपनी कमाई से कुर्ता लिया।

यह क्या सच में मेरी ही कमायी का है? किसान ने कितनी मेहनत की है। सबकी मेहनत का फल मुझे प्राप्त हुआ है और जहाँ से प्राप्त हुआ है उनके लिए कुछ न करते हुए केवल मैं अपने मनोरञ्जन के लिए जीऊँगा! वहाँ कुछ भी न देते हुए स्वयं के लिए जो जीता है, वह चोर है।

3.13

यज्ञशिष्टाशिनः(स्) सन्तो, मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं(म्) पापा, ये पचन्त्यात्मकारणात्॥3.13॥

यज्ञशेष- (योग-) का अनुभव करने वाले श्रेष्ठ मनुष्य सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाते हैं। परन्तु जो केवल अपने लिये ही पकाते अर्थात् सब कर्म करते हैं, वे पापीलोग तो पाप का ही भक्षण करते हैं।

विवेचन- जो अपने जीवन का यज्ञ, जहाँ से प्राप्त हुआ है। उनके लिए कर्त्तव्य के रूप में, यज्ञ के भाव से कर्म करते जाता है और उससे जो प्राप्त होता है, सबको देकर स्वयं के लिए जो बचता है, वह यज्ञ अवशिष्ट है, वह प्रसाद है। यह यज्ञ अवशिष्ट ही प्रसाद है।

पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण और समाज-ऋण देने के पश्चात् जो मेरे लिए बचा है, वह मेरे लिए प्रसाद है। ऐसा प्रसाद ग्रहण करने वाले सन्त सारे पापों से मुक्त होते जाते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि कुछ लोग जो स्वयं के लिए ही जीते हैं, वे पापी लोग तो पाप ही खाते हैं। मैं और मेरा मनोरञ्जन, मैं और मेरा सुख, मैं और मेरा खाना! बस यही देखते हैं। किसी को कुछ मिला या नहीं, वो नहीं देखते हैं, बाकि समाज भूखा है ये नहीं सोचकर जो व्यक्ति स्वयं के स्वार्थ के लिए जीता है, श्रीभगवान् कहते हैं कि वे तो पाप ही खाते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि यह तो संसार का चक्र है जो निश्चित रूप से चलता जाता है। उस चक्र को चलाने के लिए जो सहायक होता है, वही श्रेष्ठ है। जो उसके विपरीत काम करता है, वह पापी है।

इस संसार के चक्र को जो श्रीभगवान् ने प्रवर्तित किया है, उसके लिए सारे ऋणों को चुकाने का प्रयास हमें करते रहना चाहिए। हमें यज्ञार्थ जीवन जीना चाहिए। श्रीभगवान् का यह सन्देश पाँच सहस्त्र वर्ष के पश्चात् भी सार्थक है, क्योंकि श्रीभगवान् ने जो स्वयं किया है, वही बताते हैं।

इसके साथ ही आज के विवेचन सत्र का समापन होता है और प्रश्नोत्तर सत्र शुरू होता है।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- सुषमा दीदी
प्रश्न- आपने यज्ञार्थ का मतलब बताया था कि श्रीभगवान् के लिए कर्म करना और उनके लिए कर्म करते हुए बन्धन से मुक्त होना। मैं पूछना चाहती हूँ कि जो हम रोजमर्रा की जिन्दगी में काम कर रहे हैं उन्हें यज्ञार्थ कर्म कैसे बनाएँ?
उत्तर- यह बहुत अच्छा प्रश्न है आप गृहणी है क्या? हम जो भी कर्म करते हैं, जैसे आप गृहणी हो, घर में रोटी बनाने का काम करती हो। हमें हर समय अपने मन में यह विचार लाना चाहिए कि श्रीभगवान् ने यह काम हमें सौंपा हुआ है और घर के सारे परिवारजन श्रीभगवान् के ही बालक हैं। उनके लिए खाना बनाने का काम श्रीभगवान् ने दायित्व के रूप में मुझे दिया है। यह काम करके मैं अपना कर्तव्य पूरा करती हूँ और इस भाव से निवृत्त हो जाती हूँ कि हे भगवन्! आपने जो भी काम मुझे सौंपा है, मैं उस काम को पूरा कर रही हूँ। यह सब आपको ही अर्पण है। यदि हम इस भाव से कोई भी कर्म करेंगे तो वह काम यज्ञ बन जाता है।

प्रश्नकर्ता- सुषमा दीदी
प्रश्न- जैसे हम दैनिक दिनचर्या करते हैं तो हमारे मन में यज्ञ का भाव नहीं आता है तो इसके लिए क्या करें?
उत्तर- श्रीभगवान् यही भाव लाने के लिए तो कहते हैं। यह भगवद्गीता में भी सिखाया गया है। हमें यह भाव अपने मन में लाने के लिए अभी समय लगेगा। इसके लिए हम एक प्रार्थना करेंगे।

कर प्रणाम तेरे चरणों में,
करता हूँ अब तेरे काज।

पालन करने को मैं नियुक्त हुआ हूँ आज ।।
सुबह उठकर हमें श्रीभगवान् से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन्! मैं आपका काम करने के लिए, आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए नियुक्त हुआ हूँ। मैं जो भी दिन भर का काम कर रहा हूँ, वह सब आपका ही काम है।
हमें अभी तक हर काम करते हुए श्रीभगवान् की याद नहीं आती है, इसके लिए समय लगेगा। हमें धीरे-धीरे ही समझ आएगा कि यह सब श्रीभगवान् का ही कार्य है और उसी भाव से करना है और सभी कार्य-कर्म श्रीभगवान् को ही अर्पण करते जाना है।

प्रश्नकर्ता- उमाकान्त भैया
प्रश्न- जो भी हम कर्म कर रहे हैं तो क्या उन सभी कर्मों को हमें श्रीभगवान् के आदेश के अनुसार दिया हुआ कर्म मानना चाहिए?
उत्तर- जो कर्त्तव्य कर्म हमारे सामने आए हैं, वे श्रीभगवान् के द्वारा ही हमे सौंपे गये है, यही भाव हमें अपने मन में लाना चाहिए और श्रीभगवान् के लिए ही हमें वह कर्म करने हैं, यही भाव मन में लाना चाहिएं। यदि हम यही भाव लेकर कोई कर्म करेंगे तो गलत कर्म करने की इच्छा, यदि मन में आती भी है तो हमारे मन से आवाज आएगी कि हमें यह काम नहीं करना है। श्रीभगवान् हमें तुरन्त मार्ग दिखा देते हैं कि हमें यह काम नहीं करना है। यह हमारे योग्य नहीं है और यदि हम अपनी इच्छा से कोई भी कर्म कर लेते हैं फिर कहेंगे कि यह श्रीभगवान् की इच्छा है तो यह नहीं चलेगा परन्तु यह सोचकर यदि हम करेंगे कि यही इच्छा श्रीभगवान् की है तो कर्म अच्छे होंगे। मन ही मन में श्रीभगवान् से संवाद करते जायेंगे और काम करते जायेंगे तो हमारे सारे काम अच्छे होंगे।

"ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु"

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं

पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||